|| श्रीमद्भगवद्गीता विवेचन सारांश ||

अध्याय 5: कर्मसंन्यासयोग

1/2 (श्लोक 1-9), शनिवार, 06 अप्रैल 2024

विवेचक: गीता विशारद डॉ. संजय जी मालपाणी

यूट्यूब लिंक: https://youtu.be/JB7L4vzuRac

ज्ञानयोग और कर्मयोग-साधन भिन्न, फल एक

सनातन धर्म की दिव्य परम्पराओं का पालन करते हुए मङ्गलाचरण, दीप प्रज्वलन एवं गुरु वन्दना के साथ विवेचन सत्र का शुभारम्भ हुआ।

हम सब अत्यन्त भाग्यशाली हैं कि भगवद्गीता की अँगुली थाम या यूँ कहें स्वयं ईश्वर की ही अँगुली पकड़ इस पवित्र यात्रा में आगे बढ़ रहे हैं। श्रीमद्भगवदगीता श्रीभगवान् का साक्षात वाङ्ग्मयी विग्रह है, वह श्रीभगवान् का ही प्रतीक है। जब हम श्रीमद्भगवदगीता में अपना मन रमाते हैं तो वस्तुतः भगवान् में ही रम जाते हैं। पाँचवा अध्याय बड़ा ही अद्भुत है, यह हम आगे जानेंगे।

तीसरे अध्याय में श्रीभगवान् ने कर्मयोग समझाया और चौथे अध्याय में योग की विस्तृत व्याख्या करते हुए कहा कि योग का उल्लेख तो वह पहले भी कई बार कर चुके हैं।

इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम्।
विवस्वान् मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत्।।4.1
एवं परम्पराप्राप्तमिमं राजर्षयो विदुः।
स कालेनेह महता योगो नष्टः परन्तप।।4.2।।

योग का शास्त्र अनादि है और यह परम्परा से प्राप्त योग है क्योंकि जब से मानव जन्म हुआ तब से योग भी स्थापित हुआ।

निस्संदेह, महाभारत के युद्ध में विजय प्राप्त करने के लिए अर्जुन उच्चतम कोटि के पराक्रमी थे, परन्तु अपने मन में चल रहे धर्मयुद्ध में पराजित होने की कगार पर थे। अपनी प्रजा के हित के लिए आततायियों का विध्वंस करना, यह क्षत्रिय होने के नाते उनका परम कर्त्तव्य था परन्तु जिनसे उन्हें युद्ध करना पड़ रहा था वे सभी उनके अपने थे - गुरु द्रोणाचार्य, भीष्म पितामह आदि, अतः उन्हें वह कैसे मार दें? अपने मन में चल रहे द्वन्द्व, कि पारिवारिक धर्म का पालन करे या क्षात्र धर्म का, इस दुविधा का हल नहीं जान पा रहे थे।

दूसरे अध्याय में भी अर्जुन विषादयुक्त मन से श्रीभगवान् से कहते हैं -

अपने प्रियजनों के रक्त से सने हाथों से कैसे राज्यारोहण कर पाऊँगा? यह चिन्ता उन्हें सता रही थी। अपने गुरु को हराने का पराक्रम उनमें था और इससे पहले भी वह कई बार अकेले ही सौ कौरवों, कर्ण, भीष्म पितामह और गुरु द्रोणाचार्य सहित विरोधी पक्ष को हरा चुके थे।महाभारत में घटित विराटनगर का युद्ध अर्जुन के शौर्य का प्रबल प्रमाण है।

अज्ञातवास के अन्तिम दिन कीचक का वध हो जाता है। उस कीचक को किसी मल्ल ने इतनी नृशंसता से मारा कि उसके शरीर की एक भी हड्डी नहीं बची, सब हड्डियाँ चकनाचूर हो गई और माँस का केवल एक गोला बन कर रह गया। फिर उसके अन्तिम संस्कार की तैयारी में लगी अनुकीचकों की सेना का सँहार कर दिया जाता है, केवल एक धनुर्धारी द्वारा। कीचकों की वह ऐसी आतङ्ककारी सेना थी जिसे कोई परास्त नहीं कर पाया था। कीचक के साथ बँधी हुई सैरन्ध्री को छुड़वाने के लिए एक धनुर्धारी सौ के सौ अनुकीचकों को अपने धनुर्कौशल से मार देता है; ऐसा पराक्रम तो केवल भीम या अर्जुन की भुजाओं में ही है, यह दुर्योधन जानता था। इस क्षति का बदला लेने के लिए दुर्योधन ने अपनी समग्र सेना विराट नगर के एक ओर भेजी और दूसरे छोर से अपने सौ भाइयों, कर्ण, गुरु द्रोणाचार्य और भीष्म पितामह के साथ विराट नगर पर आक्रमण कर दिया। प्रतिकार में विराटनगर नरेश कौरवों की सेना से युद्ध लड़ने के लिए एक ओर मोर्चा सँभालते हैं और दूसरे छोर पर राज्य की रक्षा करने का दायित्व उनके राजपुत्र उत्तर पर आ जाता है। उत्तर भयभीत हो जाता है और सारथी न होने का बहाना ढूँढ कर अपने कर्त्तव्य से विमुख होना चाहता था। तब सैरन्ध्री, जो वास्तविक रूप में द्रौपदी है, उसे परामर्श देती है कि जो वृहन्नला उसे नृत्य सिखाती हैं, वह बहुत अच्छी सारथी होने के साथ साथ निपुण धनुर्धारी भी हैं।

वृहन्नला वास्तव में अर्जुन ही थे जो अज्ञातवास में नारी के वेश में विराट नरेश के पुत्रों को नृत्य सिखाने का काम करने लगते हैं। वृहन्नला उत्तर का सारथी बन रथ को श्मशान की ओर ले जाती है और वहाँ एक शमी के वृक्ष पर पुरुष की भाँति चढ़ श्वेत वस्त्रों में लिपटा हुआ एक मृत देह उतार लाती है। उत्तर यह सब भौंचक्का हुआ देखता है और जब उस देह रूपी आकार का अनावरण हुआ तो उसमें से गदा, गाण्डीव, धनुष और बाणों का भण्डार निकलता है, जो पाण्डवों के ही दिव्यास्त्र थे जिन्हें अज्ञातवास के कारण वहाँ छिपाकर रखा था। इन शस्त्रों से लैस वृहन्नला युद्ध की ओर रथ मोड़ लेती हैं। उत्तर यह सब देख और अधिक घबरा जाता है और चलते रथ से कूद विपरीत दिशा में भागने लगता है। तब वृहन्नला एक बार फिर उसे खींच कर वापिस लाती हैं और उसे केवल रथ की बागडोर संँभालने को कहती हैं। उस रण में अर्जुन वृहन्नला के रूप में दुर्योधन की सेना से अकेले ही लड़ते हैं। वृहन्नला ऐसा मोहिनी अस्त्र प्रयोग में लाती है कि सब कौरव मोह निद्रा में सो जाते हैं। इसके पश्चात् वह उत्तर को उन सभी कौरवों के उत्तरीय उतार कर लाने को कहती है। उत्तरा के पास अनेकों गुड़ियों का सङ्ग्रह था। वृहन्नला उसे झाँसा देती है कि कौरवों के वस्त्रों से गुड़ियों के नए वस्त्र बनाये जायेंगे। वास्तव में अर्जुन द्रौपदी के अपमान का बदला ले रहे थे। किसी भी योद्धा के लिए यह अत्यन्त अपमानजनक घटना है कि युद्ध क्षेत्र में उसे निःवस्त्र कर दिया गया। जिस दुःसाहस के चलते दुःशासन और दुर्योधन ने भरी सभा में द्रौपदी का अपमान किया था उसका प्रतिकार करने के लिए आज अर्जुन को अवसर प्राप्त हुआ था। उन्होनें उत्तर को यह निर्देश भी दिया कि जो दो श्वेत दाढ़ी वाले योद्धा हैं उन के उत्तरीय न उतारना क्योंकि वे दोनों पूजनीय हैं।

कौरवों और कर्ण का ऐसा अपमान करने वाले अर्जुन आज श्रीभगवान् के सम्मुख रोते हुए कहते हैं -

गुरूनहत्वा हि महानुभावाञ्श्रेयो भोक्तुं भैक्ष्यमपीह लोके।
हत्वार्थकामांस्तु गुरूनिहैव भुञ्जीय भोगान् रुधिरप्रदिग्धान्।।2.5।।

रक्तरञ्जित हाथों से कैसे राज्य कर पाउँगा, इस विषाद से पीड़ित अर्जुन को श्रीभगवान् तीसरे अध्याय में अपना कर्म करने के लिए कर्मयोग का पाठ सिखाते हैं। समत्व की भावना से लड़ने की सीख देते हैं और जय हो या पराजय, लाभ हो या हानि हो, युद्ध करने को कहते हैं क्योंकि यह युद्ध आत्मरक्षा के लिए नहीं अपितु प्रजा के हित के लिए, स्वार्थ के लिए नहीं परमार्थ के लिए लड़ा जा रहा है। स्वयं राज्यारोहण के स्वार्थ के लिए नहीं अपितु समष्टि के लिए यह युद्ध किया जा रहा है। सबके हित के लिए इन आततायियों को परास्त करने के लिए यह युद्ध तो लड़ना ही होगा।

सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ।
ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि।।2.38।।

श्रीमद्भगवद्गीता पराक्रम की सीख देती है, भक्ति की सीख तो बारहवें अध्याय से आरम्भ होती है। दूसरे अध्याय में जैसे ही अर्जुन श्रीभगवान की शरणागति में आते हैं भगवद्गीता प्रकट होती है।

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः पृच्छामि त्वां धर्मसम्मूढचेताः।
यच्छ्रेयः स्यानिश्चितं ब्रूहि तन्मे शिष्यस्तेऽहंशाधि मां त्वां प्रपन्नम् ॥2.7॥

जब अर्जुन श्रीभगवान् के चरणों में झुककर अपने लिए जो श्रेयस्कर हो उसकी मांँग करते हैं तब श्रीमद्भगवद्गीता आरम्भ हुई। जब तक अर्जुन का 'मैं' प्रबल था - 'मैं' कैसे मारुँ, 'मैं' पाप का भागीदार कैसे बनूँ, 'मेरी' भाभियाँ विधवा ही जाएँगी, 'मेरे' कारण होगा। जब तक अर्जुन का यह भाव था तब तक गीता नहीं थी क्योंकि जबतक 'मैं' है तब तक 'वो' नहीं आता और जब 'वो' आ जाता है तब 'मैं' नहीं रहता। यह एक अद्‌भुत संयोग बनता है।

जब अर्जुन मन में चल रहे धर्मयुद्ध से व्यथित हो श्रीभगवान् से अपने लिए श्रेयस्कर मार्ग चुनने की सहायता की माँग रखते हैं तब श्रीभगवान् तीसरे अध्याय में कर्मयोग की व्याख्या करते हुए उसे समझाते हैं कि समत्व बुद्धि से समष्टि के कल्याण हेतु युद्ध करना अनिवार्य है।

शत्रु और मित्र को सामान दृष्टि से देख युद्ध करना है, अर्जुन के शत्रु दुर्योधन या दुःशासन नहीं थे। शत्रुता का पूरा भाव समाप्त कर युद्ध करना है। ग्यारहवें अध्याय की अन्तिम पङ्क्ति में श्रीभगवान कहते हैं -

जो निर्वैर होकर ईश्वर की शरण आता है वह ही ईश्वर को प्राप्त करता है। ऐसी अद्‌भुत सीख श्रीमद्भगवदगीता देती है। बैर छोड़कर युद्ध करने की सीख देती है। तीसरे अध्याय में बैरी की पहचान कराते हुए श्रीभगवान कहते हैं कि हमारा सबसे बड़ा बैरी हमारी कामनाएँ होती हैं।

काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः।
महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम्।।3.37।

रजो गुण से उत्पन्न क्रोध, कामनायें ही हमारे सबसे बड़े शत्रु होते हैं। इसलिये स्वयं को पहचान अपने पर विजय प्राप्त करना आवश्यक है।

दूसरों की जय से पहले खुद को जय करें ।

श्रीभगवान् अतः समझाते हैं कि समत्व बुद्धि से केवल भगवान् के लिए ही कर्म करना है।

यहांँ भगवान श्रीकृष्ण नहीं हैं। समस्त महाभारत में जब श्रीकृष्ण बोले तो लिखा गया "**वसुदेव उवाच**" पर श्रीमद्भगवदगीता के अट्ठारह अध्यायों में ही केवल "**श्रीभगवानुवाच**" कहा जाता है क्योंकि भगवान, श्रीकृष्ण की वाणी से युगों-युगों का जो योग शास्त्र है उसे उद्गत कर रहे हैं। पुरुषोत्तम स्वयं मानव जाति के कल्याण के लिए श्रीकृष्ण की वाणी के माध्यम से जग को समत्व भाव से कर्म करने की प्रेरणा दे रहे हैं।

5.1

अर्जुन उवाच सन्न्यासं(ङ्) कर्मणां(ङ्) कृष्ण, पुनर्योगं(ञ्) च शंससि। यच्छ्रेय एतयोरेकं(न्), तन्मे ब्रूहि सुनिश्चितम्॥5.1॥

अर्जुन बोले - हे कृष्ण ! (आप) कर्मों का स्वरूप से त्याग करने की और फिर कर्मयोग की प्रशंसा करते हैं। (अतः) इन दोनों साधनों में जो एक निश्चित रूपसे कल्याण कारक हो, उसको मेरे लिये कहिय

विवेचन: अर्जुन श्रीभगवान् से प्रश्न करते हैं कि एक ओर आप संन्यास लेने की प्रेरणा देते हैं और दूसरी ओर कर्म को प्रधान बताते हैं तो इन दोनों में से किसका चयन करना चाहिये। मेरे लिए जो निश्चित कल्याणकारी हो वह साधन मुझे बतलायें। अर्जुन के मन में संन्यास लेने की तीव्र इच्छा जाग्रत हो रही थी। वह तात्कालिक संन्यास लेना चाहते हैं, वैसे ही जैसे श्मशान घाट पर मनुष्य मन में उत्पन्न त्याग की भावना में भाव विभोर हो जाता है और सोचने लगता है कि एक दिन तो मैं भी ऐसे ही भस्म हो जाऊँगा तो क्यों न अच्छे कर्म कर अपने पापों से मुक्ति पा लूँ, पर यह सद्विचार इतने क्षणिक होते हैं कि घर लौटकर स्नान करते ही वे लुप्त हो जाते हैं। इसे श्मशान जनित त्याग कहा जाता है। इसी प्रकार अर्जुन के मन में भी ऐसे भाव उमड़ रहे थे क्योंकि वह युद्ध का दृश्य श्मशान के ही समान था। दोनों ओर अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित सेनाएँ थीं, जीवन और मरण के बीच अर्जुन के मन में संन्यास का भाव आना स्वाभाविक था। वह वहाँ से निकलना चाहते थे, संन्यास ले अपनी दुविधा से बचने का एक सुगम उपाय पाना चाहते थे।

संन्यासमार्गी की एक छवि है - भगवे वस्त्र एवं जटाजूट धारी, गले में माला, हाथ में चिमटा, ओम भवति भिक्षाम देहि - पाँच घरों से भिक्षा ले निर्वाह करना।

श्रीभगवान् इस भ्रम को भङ्ग करते हुए कहते हैं कि घर गृहस्थी का त्याग संन्यास नहीं, यह तो बहुत सरल है, परन्तु संन्यास का सही अर्थ तो विकारों से मुक्ति प्राप्त करना है। निर्विचार हो निर्विकारता की ओर अग्रसर होना संन्यास है ।

कर्म संन्यास सब कामों को छोड़ देना नहीं है। हम सांसारिक, व्यावहारिक कर्म अपने और अपने परिवार के पालन-पोषण हेतु करते हैं। कई अनुभव तो हम अपने आस-पास भी करते हैं, उद्विग्नता या क्रोध में कई बार लोग बोल पड़ते हैं - "मैं तो चली वृन्दावन, मुझे कुछ नहीं चहिये, मैं तो संन्यास ले रही हूँ।" आमतौर पर पारिवारिक क्लेश के कारण लोग ऐसा कह देते हैं, परन्तु यह तो वास्तविक संन्यास नहीं है क्योंकि जब तक हमें अपने क्रोध से ही मुक्ति नहीं मिली तब अन्य विकारों से मुक्ति कहाँ मिल पाएगी।

श्रीभगवान ने कर्म एवं संन्यास की एक बार और व्याख्या करते हुए अर्जुन के मन के सभी संशयों को दूर करने का प्रयास अगले श्लोक में किया है।

5.2

श्रीभगवानुवाच सन्न्यासः(ख्) कर्मयोगश्च, निःश्रेयसकरावुभौ।
तयोस्तु कर्मसन्न्यासात्, कर्मयोगो विशिष्यते॥5.2॥

श्रीभगवान् बोले - संन्यास (सांख्ययोग) और कर्मयोग दोनों ही कल्याण करने वाले हैं। परन्तु उन दोनों में (भी) कर्मसंन्यास-(सांख्ययोग) से कर्मयोग श्रेष्ठ है।

विवेचन: कर्मसंन्यास और कर्मयोग दोनों ही श्रेयस्कर हैं। कर्मयोग गृहस्थी में रहकर भी किया जा सकता है। अगर हम अपने सभी कर्मों में यह भाव ले आयें कि हम जो भी करते हैं श्रीभगवान् के लिए ही करते हैं।

रसोई परोसते हुए यदि **श्रीकृष्णार्पणमस्तु** का भाव हो जाये तो भोजन प्रसाद बन जाता है। रसोई तो कल भी वही थी, भोजन तो आज भी परिवार के जन ही ग्रहण करेंगे पर भाव बदल गया इसलिए कर्मयोग हो गया।

कर्म से कर्मयोग का प्रवास केवल भाव का बदलना है। आमतौर पर लोग कुछ पाने की इच्छा से भगवान् को पैसे का लालच देते हैं, "मुझे दादी बना दो, सवा रुपये और नारियल का प्रसाद चढ़ाऊँगी।" तीनों जग के नियन्ता को साधारण जन रुपयों से खरीदना चाहते हैं, पर भगवान् प्रसाद के भूखे नहीं, भाव के भूखे हैं।

मीरा जी ने गाया -

पायो जी मैंने राम रतन धन पायो,

वस्तु अमोलक दी मेरे सतगुरु, किरपा कर अपनायो।

जन्म-जन्म की पूंजी पाई,जग में सभी खोवायो।

खरच नाहि खूटे चोर नाहि लूटै,दिन-दिन बढ़त सवायो।

सत् की नाव खेवटिया सतगुरु,भवसागर तर आयो।

मीरा के प्रभु गिरधर नागर,हरख-हरख जस गायो।

मेरे कृष्ण तो स्वयं जगद्गुरु हैं - **कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम्**
मेरे प्रभु मेरे केवट बन भवसागर पार करवा रहे हैं।

जब भगवान् श्रीराम को केवट गङ्गा पार कराने के लिए तैयार हुआ तो पहले कहता है कि मुझे ज्ञात है कि आपकी चरण धूलि जहाँ पड़ जाती है वहाँ पत्थर भी अहिल्या बन तर जाता है। अगर मेरी नाव स्त्री बन गयी तो मेरे परिवार का भरण-पोषण कैसे होगा इसलिए मैं पहले आपके चरण धोऊँगा। सीता मैया यह सब देखकर विस्मित थीं कि जिस राम ने कन्या विवाह के समय राजा जनक को भी पाँव नहीं धोने दिए, वह कैसे तुरन्त स्वीकृति दे रहे हैं। लक्ष्मण जी भी अचम्भित रह गए कि मैंने इतनी सेवा की पर प्रभु के पाँव धोने का पुण्य अवसर तो मुझे भी प्राप्त नहीं हुआ था। आज केवट को प्रसन्नता से पाँव धोने की अनुमति दे रहे हैं।

केवट अपनी गागर में भरे गङ्गाजी के पानी से अत्यन्त प्रसन्न मन से रगड़-रगड़ पाँव धो अपनी नाव में उन्हें बिठा गङ्गा पार कराता है। गङ्गाजी भी उछल-उछल कर श्री चरणों का स्पर्श करती हैं।

जब केवट भगवान् को उस पार ले जाते हैं तो श्रीराम जी सोच में पड़ जाते हैं कि इसे मैं क्या दूँ, मेरे पास तो देने के लिए कुछ है ही नहीं, सब कुछ तो अयोध्या में छूट गया। सीता मैया यह देखकर भगवान् की मनःस्थिति भाँप लेती हैं और अपनी अँगुली की मुद्रिका निकाल उन्हें दे देती हैं। भगवान् ने जब वह अङ्गूठी केवट को भेंट की तो केवट रो पड़ा और कहता है कि मैंने यह सब इसके लिए नहीं किया था और बोले कि एक जैसा काम करने वाले व्यवसायी एक दूसरे के काम आने पर पारिश्रमिक नहीं लेते। भगवान् यह सुन चौंक पड़े और बोले मैं थोड़ी गङ्गा पार करवाता हूँ। तब केवट विनम्र भाव से बोला, मैं गङ्गा पार कराता हूँ, आप भाव सागर पार करवाते हैं। आज मैंने आपको गङ्गा पार करा दी जब मेरी बारी भव सागर पार करने की आएगी तब आप मुझ पर कृपा करना। मेरे पास भी आपको देने के लिए कुछ नहीं है। केवट के इस भाव से अति प्रसन्न हो भगवान् अपने राज्याभिषेक समारोह में केवट को निषादराज बुला कर आमन्त्रित करते हैं।

यही भाव जो मीरा में और केवट में था यदि हम भी उजागर कर पायें और '**कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम्**' मान अपनी समस्त चिन्ताएँ त्याग, केवल उसी में रम जाएँ, उसी को अपनी जीवन डोर सौंप दें।

अब सौंप दिया इस जीवन का भार तुम्हारे हाथों में, मेरी जीत तेरे हाथों में, मेरी हार भी तेरे हाथों में। अगर यह भाव मन में आ जाये, तो हारने की सम्भावना ही नहीं बचती, केवल जीत ही जीत है। ईश्वर पर ऐसा अटूट विश्वास भक्तियोग है।

श्रीभगवान कहते हैं - कर्मसंन्यासात्, कर्मयोगो विशिष्यते

कर्म संन्यास से कर्मयोग साधन में सुलभ होने से श्रेष्ठ है। ज्ञानयोग में स्वयं रास्ता निकालना पड़ता है। यह मार्ग अत्यन्त सरल है, केवल ईश्वर पर विश्वास रखना है।

कर्मयोग में तनिक 'मैं' का भाव शेष रह जाता है, क्योंकि वहाँ विचार है कि मैंने भगवन् के लिये किया पर 'मैंने' किया। कर्मसंन्यास में '**मैं**' समाप्त हो जाता है। स्वयं का पिण्ड दान करना होता है, जहाँ मैं समाप्त हुआ वहाँ 'वो' हमारे साथ हो

गया। यह द्वैत का भाव होने पर भी कि 'मैं' हूँ और 'वह' मेरे निकट खड़ा मुझे पार ले जा रहा है अत्यन्त सुन्दर भाव है और सरल है क्योंकि अँगुली पकड़ने वाले का आसरा तो है। जब एक हो जायेंगे तो अँगुली किसकी पकड़ेंगे इसलिये संन्यास इतना आसान नहीं जितना कर्मयोग आसान है।

5.3

ज्ञेयः(स्) स नित्यसन्न्यासी, यो न द्वेष्टि न काङ्क्षति।
निर्द्वन्द्वो हि महाबाहो, सुखं(म्) बन्धात्प्रमुच्यते॥5.3॥

हे महाबाहो ! जो मनुष्य न (किसी से) द्वेष करता है (और) न (किसी की) आकांक्षा करता है; वह (कर्मयोगी) सदा संन्यासी समझने योग्य है; क्योंकि द्वन्द्वों से रहित (मनुष्य) सुखपूर्वक संसार-बन्धन से मुक्त हो जाता है।

विवेचन: हे अर्जुन जो पुरुष न किसी से द्वेष करता है, न किसी से आकाङ्क्षा रखता है। यही बात बारहवें अध्याय में भी कहीं गई है -

यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न काङ्क्षति ।
शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान्यः स मे प्रियः ॥17॥

जब द्वेष और कामनायें मिट जाएँ क्योंकि अपेक्षा ही समस्त दुःखों की जड़ है। वह कर्मयोगी सदा संन्यासी ही समझने योग्य है क्योंकि राग-द्वेष से विमुख व्यक्ति संसार के बन्धनों से भी मुक्त हो जाता है।

बारहवें अध्याय में श्रीभगवान् ने जो कहा वही यहाँ कह रहे हैं -
अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च ।
निर्ममो निरहङ्कारः समदुःखसुखः क्षमी ॥13॥

निर्द्वन्द्व हो, समत्व को साथ ले, कर्मसंन्यासी बनने की सीख श्रीभगवान् यहाँ अर्जुन को दे रहे हैं। हम अपने आस-पास भी कई ऐसे व्यक्ति देखते हैं जो साधारण वस्त्र धारण कर भी अपना जीवन समष्टि के लिए समर्पित कर देते हैं। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के (स्वयं सेवी) कार्यकर्त्ता इसका एक जीवन्त उदाहरण हैं। वे सांसारिक धर्म का पालन करते हुए भी समाज के उत्थान के लिए अपने जीवन को पूर्णतः इस पुण्य कार्य में झोंक देते हैं।

जो जग में रहूँ तो ऐसे रहूँ, ज्यों जल में कमल का फूल रहे।

कीचड़ में पैदा होकर भी कमल का फूल कीचड़ की एक बूँद भी अपने ऊपर नहीं पड़ने देता, उसी प्रकार सँसार में रहते हुए, संसार से निर्लिप्त होकर जीवन व्यतीत करना श्रेयस्कर है।

बारहवें अध्याय का श्लोक -

अनपेक्षः शुचिर्दक्ष उदासीनो गतव्यथः।
सर्वारम्भपरित्यागी यो मद्भक्तः स मे प्रियः।।12.16।।

अपेक्षा से दुःख उत्पन्न होता है। कोई हमारे लिए कुछ करे, यह अपेक्षा रखना ही दुःख को बढ़ावा देता है। जब हम किसी के लिए कुछ करते हैं तो उस भाव का त्याग करना आवश्यक है कि मैंने यह तुम्हारे लिए किया, यही कर्मयोग है। अपेक्षा होने पर कर्मयोग सम्भव नहीं।

अहङ्कार इतनी जल्दी जाता नहीं है, वह, 'मैं-मैं', का राग अलापता रहता है। यह 'मैं' का भाव भगवान को आने नहीं देता इसलिए

सर्वप्रथम इस भाव को समाप्त करने का प्रयास करना होगा।

अंग्रेज़ी भाषा में आदत अर्थात् स्वभाव को- **HABIT** कहते हैं। HABIT अर्थात् स्वभाव को बदलने के लिए पहले **H** को निकालना पड़ता है। **a bit** अभी भी बच जाता है। उसके बाद **A** को तोड़ा तो बच गया **bit,** वह जो अभी भी थोड़ा सा बचा उस के लिए **B** को तोड़ना पड़ता है। फिर भी **it** बच जाता है, उसे यदि पूर्णतः निष्कासित करना है तो अंत में **I** को तोडना पड़ता है। **I** को अन्दर से भुलाना पड़ता है।

मैंने किया से बाहर निकल - **निर्ममो निरहङ्कार** बनना पड़ता है। भाव बदलना पड़ता है, मैंने नहीं किया उसने करवाया का भाव जाग्रत करना पड़ता है।

किसी के लिए द्वेष भी न करें, अद्वेष्टा बन जाओ। यदि ऐसा हो गया, न द्वेष रहा, न आकाङ्क्षा फिर जीवन में कुछ भी आपको उद्वेगित नहीं कर पायेगा। ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार आग के बुझने के बाद राख को कपास में बाँधें तो कपास जलती नहीं। जब हम मम् के भाव को जला कर राख कर देंगे फिर हमारा कुछ नहीं बिगड़ पायेगा।

5.4

साङ्ख्ययोगौ पृथग्बालाः(फ्), प्रवदन्ति न पण्डिताः।
एकमप्यास्थितः(स्) सम्यग्, उभयोर्विन्दते फलम्॥5.4॥

बेसमझ लोग सांख्ययोग और कर्मयोग को अलग-अलग (फल वाले) कहते हैं, न कि पण्डितजन; (क्योंकि) (इन दोनों में से) एक साधन में भी अच्छी तरह से (स्थित) मनुष्य दोनों के फलरूप (परमात्मा को) प्राप्त कर लेता है।

विवेचन: बालाः यानि अज्ञानी, साङ्ख्य और योग को पृथक-पृथक देखते हैं, परन्तु जो पण्डित हैं वे जानते हैं कि वे एक ही फल को प्राप्त करते हैं। वह फल है 'परमात्मा' .

आप तैर कर जाओ या नौका में बैठ कर जाओ, आप उस पार पहुँच जायेंगे, गन्तव्य स्थान तो एक ही है। घर में यदि दो दीपक पास-पास जल रहे हैं, एक मन्दिर में और दूसरा मन्दिर के बाहर, क्या हम दोनों प्रकाशों को भिन्न दृष्टि से देखते हैं? वे दोनों तो एक ही हैं, एक ही अग्नि तत्त्व है। जिस प्रकार प्रकाश को पृथक-पृथक नहीं कर सकते उसी प्रकार संन्यास और कर्मयोग को पृथक-पृथक देखने की आवश्यकता नहीं।

गन्तव्य का मार्ग किस दिशा में है? यह दो लोगों का भिन्न हो सकता है क्योंकि वे गन्तव्य की ओर किस दिशा से बढ़ रहे हैं यह उस पर निर्भर है, पर शिखर तो एक ही है। उदाहरण के लिए, यदि किसी के सद्गुरु पूर्व की ओर बढ़ने को कहें और किसी के पश्चिम की ओर तो चौंकना नहीं चाहिए क्योंकि गन्तव्य तक पहुँचने के मार्ग भिन्न हैं, पर अन्तिम गन्तव्य उस शिखर तक पहुँचना है।

अतः कर्मयोग और संन्यास भिन्न नहीं हैं, परमात्मा की प्राप्ति के लिए दोनों उत्तम मार्ग हैं।

5.5

यत्साङ्ख्यैः(फ्) प्राप्यते स्थानं(न्), तद्योगैरपि गम्यते।
एकं(म्) साङ्ख्यं(ञ्) च योगं(ञ्) च, यः(फ्) पश्यति स पश्यति॥5.5॥

सांख्ययोगियों के द्वारा जो तत्त्व प्राप्त किया जाता है, कर्मयोगियों के द्वारा भी वही प्राप्त किया जाता है। (अतः) जो मनुष्य सांख्ययोग और कर्मयोग को (फलरूप में) एक देखता है, वही (ठीक) देखता है।

विवेचन: ज्ञानियों के द्वारा जो परम धाम प्राप्त किया जाता है, कर्म योगियों के द्वारा भी वही धाम प्राप्त किया जाता है इसलिये जो

व्यक्ति ज्ञानयोग और कर्मयोग को एक समान देखता है, वह सही देख रहा है।

भगवान ने सभी मार्ग बता दिए। सभी उपनिषदों का दोहन किया है श्रीभगवान् ने,

सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपालनन्दनः ।
पार्थो वत्सः सुधीर्भोक्ता दुग्धं गीतामृतं महत् ।६।

सभी उपनिषद गाय और उसका दोहन करने वाला ग्वाल गोपाल नन्दन। श्रीभगवान ने अर्जुन को निमित्त बनाकर गीतारूपी अमृत हमारे जैसे कई पीढ़ियों, शताब्दियों, युग-युगान्तर में आने वाले भक्तों के लिए सुनाया। श्रीभगवान् को नहीं पता कि कौन कहाँ खड़ा है क्योंकि आगे का मार्ग तो वहीँ से निश्चित होगा जहाँ हम अभी खड़े हैं। अगर हमें कहीं जाना हो और हम किसी से रास्ता पूछें तो वह पहले पूछेगा कि आप कहाँ खड़े हो? ठीक उसी प्रकार श्रीभगवान नहीं जानते कि हमें कर्मयोग भाता है कि ज्ञानयोग इसलिए उन्होंने आने वाले कई युग-युगान्तर के लिए रास्ता विस्तार से समझा दिया। सच्चा गुरु वही है जो शिष्य का मार्गदर्शन यह ध्यान में रख कर करे कि शिष्य अभी कहाँ तक पहुँच पाया है।

यदि आप किसी से पूछें कि गङ्गा पार करवाने के लिए कोई अच्छा नाविक बताओ तो वह आपसे पहले पूछेगा कि आप गङ्गा के किस ओर खड़े हो? मूल बात यह है कि नाविक तो आपको पार लगा ही देगा पर आप कहाँ खड़े हैं?

जिस प्रकार कोई माँ अपने नवजात शिशु और एक पाँच वर्ष के बालक को भिन्न भोजन परोसेगी, शिशु को स्तनपान करवाएगी और बड़े बालक को रोटी परोसेगी। दोनों की माँ यशोदा एक ही है, बालकों के पेट में जाकर अन्न रक्त में ही परिवर्तित हो जायेगा, दोनों का ही भरण-पोषण होना है।

इसी प्रकार साध्य भले एक ही हो, साधन अलग होते हैं।

5.6

सन्न्यासस्तु महाबाहो, दुःखमाप्तुमयोगतः।
योगयुक्तो मुनिर्ब्रह्म, नचिरेणाधिगच्छति॥5.6॥

परन्तु हे महाबाहो ! कर्मयोग के बिना संन्यास सिद्ध होना कठिन है। मननशील कर्मयोगी शीघ्र ही ब्रह्म को प्राप्त हो जाता है।

विवेचन: कर्मयोग पहली सीढ़ी है, उसके बाद संन्यास का मार्ग प्रशस्त होता है। हमारे यहाँ चार पुरुषार्थ कहे गए और उनके लिए चार आश्रम भी बताये गए। पहला है **ब्रह्मचर्य**, **गृहस्थ**, **वानप्रस्थ** और **संन्यास** तो चौथी सीढ़ी चढ़ने पर आता है। बीच में वानप्रस्थ, कि मैं घर में तो हूँ, पर अब ध्यान श्रीभगवान् पर लग गया। गृहस्थ में पूरा ध्यान घर पर ही था पर अब बच्चे बड़े हो गए, बहुएँ आ गईं, पोता-पोती खेलने लग गए, अब संसार से ध्यान हटाना होगा। कुछ व्यक्ति इस पड़ाव में आकर भी गृहस्थी में अटके रहते हैं - आज कौन सी सब्ज़ी बन रही है? दिन भर बैठे रहना भी ठीक नहीं अतः माला हाथ में ले श्रीभगवान् का नाम जपें।

श्रीभगवान् ने कहा -

महर्षीणां भृगुरहं गिरामस्म्येकमक्षरम्।
यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि स्थावराणां हिमालयः।।

सारे यज्ञों में जपयज्ञ में ही हूँ। इधर-उधर ध्यान लगाने के स्थान पर जो भी सब्ज़ी बने आनन्द से ग्रहण करो, उसी को प्रसाद समझ कर ग्रहण करो। भोजन में यदि मसाला कम-ज़्यादा भी हो तो क्रोध की आवश्यकता नहीं। भोजन के समय क्रोध की भावना मन को स्पर्श भी न करे। रसोईघर में सबसे पवित्रतम यज्ञ कार्य चलता है इसलिये रसोईघर में कभी क्लेश न हो यह

सावधानी बरतें। उदर का भरण करने के लिए की गई क्रिया यज्ञकर्म है।

शीतोष्ण सुख-दुःखे - अभी से ही आदत डाल लें, जो भी भोजन परोसा गया है, उसे पसन्द करिये न कि पसन्द का खाना थाली में हमेशा डालें।

यह बहुत ही सरल उपाय है-

जो जग में रहूँ तो ऐसे रहूँ, जैसे जल में कमल का फूल रहे,
मेरे सब गुण दोष समर्पित हों, करतार तुम्हारे हाथों में ॥
अब सौंप दिया इस जीवन का,सब भार तुम्हारे हाथों में,
है जीत तुम्हारे हाथों में,और हार तुम्हारे हाथों में ॥

समर्पण से ही योग उत्पन्न होता है।

5.7

योगयुक्तो विशुद्धात्मा, विजितात्मा जितेन्द्रियः।
सर्वभूतात्मभूतात्मा, कुर्वन्नपि न लिप्यते॥5.7॥

जिसकी इन्द्रियाँ अपने वश में हैं, जिसका अन्तःकरण निर्मल है, जिसका शरीर अपने वश में है (और) सम्पूर्ण प्राणियों की आत्मा ही जिसकी आत्मा है, (ऐसा) कर्मयोगी (कर्म) करते हुए भी लिप्त नहीं होता।

विवेचन: एक अस्पताल के सामान्य वार्ड में, एक व्यक्ति मृत्यु के कगार पर पड़ा है और उसका परिवार उसके आस-पास खड़ा है। मरते-मरते अपने बच्चों को सूचना दे रहा है, बँटवारा कर रहा है। पाँच पत्नी के नाम, कुछ बड़े लड़के को, कुछ छोटे लड़के को कॉलोनी बाँट रहा है। वहाँ उपस्थित स्वास्थ्य कर्मचारी ने अचम्भे में पूछा - कितनी कॉलोनियाँ हैं आपकी, आप तो काफी धनवान हैं। तब पत्नी ने समझाया कि समाचार पत्र के वितरण का काम करते हैं और वही सुविधानुसार सबको बाँट कर जाना चाहते हैं।

जीवन के अन्तिम क्षणों में भी ईश्वर के ध्यान से विमुख हैं, मन फँसा हुआ है। मन में विचारों से विकार पनपते रहेंगे। मन को विकार रहित करने के लिए विचार रहित करना पड़ेगा। विचार और विकार रहित मन ही मुक्त हो सकता है, नहीं तो आत्मा से चिपक जायेगा और उसे दिशा प्रदान करेगा और हम जन्म और मरण के चक्कर में फँसे रहेंगे।

श्रीभगवान् कहते हैं - जिसका मन उसके वश में है, अटका हुआ नहीं है, जो विजित आत्मा है, जिसने इन्द्रियों को जीत लिया है, विशुद्ध आत्मा है।भेद भी समाप्त हो गया, सभी प्राणियों में ईश्वर स्वरुप का ही दर्शन है - क्या तुम और क्या मैं का भाव जिस क्षण आ गया, ऐसा योगी परमब्रह्म परमात्मा को शीघ्र ही प्राप्त हो जाता है।

अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शान्तिरपैशुनम्।
दया भूतेष्वलोलुप्त्वं मार्दवं ह्रीरचापलम्।।16.2।।

दैवीगुण सम्पत्ति को प्राप्त करें, हर परिस्थिति में सम रहें क्योंकि आनन्द का झरना तो अन्दर है, परिस्थिति बाहर है। सारे दुःखों का नाश करने के लिए चित्त वृत्तियों को आनन्दित करना सीख लो।

यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न काङ्क्षति ।
शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान्यः स मे प्रियः ॥17॥

जिसका अन्तःकरण विशुद्ध हो गया वह ही परमात्मा से तादात्म्य हो पाता है। पानी में नमक की भांँति भक्त बनना चाहिए, डालो तो एक, निकालो तो अलग हो जाएगा। यह हमारे ऊपर निर्भर है कि हम क्या चाहते हैं।

कोऽहम् कोऽहम् - यह हमारे ऋषि मुनियों ने स्वयं से पूछा कि मैं कौन हूँ? हर साँस के साथ उत्तर आता गया **सोऽहम्**। मैं वही हूँ, वही परमात्मा का तत्त्व मेरे अन्दर आत्मा के रूप में विद्यमान है। मैं परमात्मा का ही अंश हूँ।

5.8, 5.9

नैव किञ्चित्करोमीति, युक्तो मन्येत तत्त्ववित्।
पश्यञ्शृण्वन्स्पृशञ्जिघ्रन्, नश्नन्गच्छन्स्वपञ्श्वसन्॥5.8॥
प्रलपन्विसृजन्गृह्णन्, नुन्मिषन्निमिषन्नपि।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेषु, वर्तन्त इति धारयन्॥5.9॥

तत्त्व को जानने वाला सांख्ययोगी देखता हुआ, सुनता हुआ, छूता हुआ, सूँघता हुआ, खाता हुआ, चलता हुआ, ग्रहण करता हुआ, बोलता हुआ, (मल-मूत्र का) त्याग करता हुआ, सोता हुआ, श्वास लेता हुआ (तथा) आँखें खोलता हुआ (और) मूँदता हुआ भी सम्पूर्ण इन्द्रियाँ इन्द्रियों के विषयों में बरत रही हैं' - ऐसा समझकर '(मैं स्वयं) कुछ भी नहीं करता हूँ' - ऐसा माने। (5.8-5.9)

विवेचन: इस तत्त्व को जानने वाला साङ्ख्ययोगी, देखता हुआ, सुनता हुआ, छूता हुआ, सूँघता हुआ, खाता हुआ, चलता हुआ, ग्रहण करता हुआ, बोलता हुआ,(मल-मूत्र का) त्याग करता हुआ, सोता हुआ, श्वास लेता हुआ(तथा) आँखें खोलता हुआ, मूँदता हुआ, इतना मैं (अहम्) से बाहर निकल गया कि उसे ज्ञात हो गया कि वह कुछ नहीं कर रहा। प्राणायाम करते हुए तो आप साँस ले रहे हैं पर सोते हुए कौन साँस ले रहा है? आपकी नाक साँस ले रही है, अपना कार्य कर रही है। न तू आँख है न नाक है, यही भाव पुष्ट करना है।

भगवान शङ्कराचार्य जी कहते हैं-

आत्मा त्वं गिरिजा मतिः सहचराः प्राणाः शरीरं गृहं
पूजा ते विषयोपभोग रचना निद्रा समाधिस्थितिः ।
संचारः पदयोः प्रदक्षिण विधिः स्तोत्राणि सर्वा गिरा
यद्यत्कर्म करोमि तत्तदखिलं शम्भो तवाराधनाम ।।

मेरा जो भी कर्म हो, विषय भोगों का उपभोग जो ले रहा हूँ, वह भी तेरी पूजा है। भोजन ग्रहण भी इस भाव से करें कि मैं अपने अन्दर बैठे भगवान् को तृप्त कर रहा हूँ, अपनी जिह्वा को नहीं। मेरी निद्रा तेरी समाधी बन जाये, मैं चलूँ तो तेरी प्रदक्षिणा बन जाये, मेरे शब्द तेरे स्तोत्र बन जाएँ। मेरी कर्मेन्द्रियों से होने वाले कर्म, शम्भु तेरी पूजा बन जाएँ। यही भाव जब मन में जाग्रत हो जाये तो निश्चित रूप से हम लोग कर्मयोग के पथ पर आगे बढ़ेंगे।

पाँचवा अध्याय अत्यन्त ही सुखदायी है। जैसे-जैसे इसमें डूबते जायेंगे नए-नए अनुभव होंगे, पर यह केवल सुनने तक ही सीमित न रखें, इसे जीवन में उतारने का प्रयास करें। गीता पढ़ें, पढायें, जीवन में लायें, यह प्रयास जो करेगा निश्चय ही उसका जीवन आनन्द यात्रा बन जायेगा। इसी के साथ आज का विवेचन सम्पन्न हुआ।

विचार - मंथन(प्रश्नोत्तर):-

प्रश्नकर्ता: भूपेन्द्र जी
प्रश्न : साङ्ख्य योग क्या है? इसे सामान्य भाषा में कैसे समझ सकते हैं?
उत्तर : साङ्ख्य अर्थात् सङ्ख्या, द्वैत का निराकरण। भक्तियोग के बाद साङ्ख्य योग आता है। भक्तियोग में, मैं और परमात्मा। जब तक मैं हूँ तू नहीं। साङ्ख्य में द्वैतवाद का निराकरण करते हुए, तू ही तू सर्वत्र है का भाव प्रतिष्ठित हो जाता है।

प्रश्नकर्ता: मनीष जी
प्रश्न : अब नित्य तीन अध्याय का पारायण, पठन नहीं हो पा रहा है ग्लानि हो रही है। माला टूट जाने पर क्या करें?
उत्तर : अब तीन अध्याय का पारायण नहीं हो पा रहा तो ग्लानि का भाव न रखें। जितना होता है उतना ही करें, भाव प्रधान है, सङ्ख्या नहीं। माला टूट जाने पर फिर से नये धागे में पिरों लें। यदि कुछ मनके बिखर गए हों तो नई माला ले लें। उस माला में पूर्व उपयोग में लाई माला की ऊर्जा स्थापित करने की प्रार्थना कर, नई माला से जाप आरम्भ करें।

प्रश्नकर्ता: श्रुति ठाकुर जी
प्रश्न : ध्यान में कैसे जाएँ?
उत्तर : आपका मन जिस कार्य में लगे उसमें ध्यान लगा लें। मन को निर्विचार करना धारणा है। एक समय में एक ही विचार आता है। एक विचार के जाने पर ही दूसरा विचार आ सकता है। विचारों के आने-जाने के मध्य में शून्य काल आता है। इसी शून्यकाल को निरन्तर अभ्यास द्वारा बढ़ाते हुए ध्यान का आरम्भ होता है।

प्रश्नकर्ता: श्रीधर जी
प्रश्न :विराट नगर में युद्ध के समय अर्जुन विषादग्रस्त नहीं हुए पर महाभारत के युद्ध में क्यों हो गए?
उत्तर :विराट नगर के युद्ध में अर्जुन का किसी को मारने का विचार नहीं था। वे केवल परास्त करना चाहते थे पर महाभारत अन्तिम क्षण था। वहाँ मृत्यु निश्चित थी इसलिये अर्जुन विषादग्रस्त हो गए। दोनों परिस्थितियों में अन्तर था।

प्रश्नकर्ता: पायल जी
प्रश्न : गुरु का होना आवश्यक है क्या?
उत्तर : गुरु का होना आवश्यक है क्योंकि गुरु ही हमारी वास्तविक स्थिति को जानते हैं। हमारी त्रुटियों को दूर कर हमें सन्मार्ग दिखा सकते हैं। उनके मार्गदर्शन में हम सहजता से ध्येय प्राप्ति की ओर बढ़ सकते हैं।

प्रश्नकर्ता: प्रमोद जी
प्रश्न : हमें अपना जीवन सफल बनाने के लिए क्या करना चाहिए?
उत्तर : हमें अपना जीवन सफल बनाने के लिए अन्तर्मन में प्रेम का बीजारोपण करना चाहिए। **समत्व का भाव निर्माण कर, उसका अभ्यास करते रहना चाहिए।** अधरों पर मुस्कान को सहजता से स्थापित करना चाहिए।

।। ॐ श्रीकृष्णार्पणमस्तु।।

हमें विश्वास है कि आपको विवेचन की रचना पढ़कर अच्छा लगा होगा। कृपया नीचे दिए लिंक का उपयोग करके हमें अपनी प्रतिक्रिया दीजिए।

https://vivechan.learngeeta.com/feedback/

विवेचन-सार आपने पढ़ा, धन्यवाद!
हम सब गीता सेवी, अनन्य भाव से प्रयास करते हैं कि विवेचन के अंश आप तक शुद्ध वर्तनी में पहुंचे। इसके बाद भी वर्तनी या भाषा संबंधी किन्हीं त्रुटियों के लिए हम क्षमा प्रार्थी हैं।

जय श्री कृष्ण !

हर घर गीता, हर कर गीता!
आइये हम सब गीता परिवार के इस ध्येय से जुड़ जायें, और अपने इष्ट-मित्र -परिचितों को गीता कक्षा का उपहार दें।

https://gift.learngeeta.com/

गीता परिवार ने एक नवीन पहल की है। अब आप पूर्व में सञ्चालित हुए सभी विवेचनों कि यूट्यूब विडियो एवं पीडीऍफ़ को देख एवं पढ़ सकते हैं। कृपया नीचे दी गयी लिंक का उपयोग करे।

https://vivechan.learngeeta.com/

|| गीता पढ़े, पढ़ायें, जीवन में लाये ||
||ॐ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ||